ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-9*October- 2017
Innovation The Research Concept

भारतीय शिक्षा प्रणाली : एक विकास क्रम

चरण सिंह
शोधार्थी,
महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय,
बीकानेर, राजस्थान

बबीता जैन
शोध पर्यवेक्षक,
राजकीय महारानी सुदर्शन
महाविद्यालय,
बीकानेर

सारांश

प्राचीन भारत में ब्रह्मचर्य व अनुशासन ही शिक्षा का प्रमुख तत्व रहा है। उस समय शिक्षा का तात्पर्य केवल किताबी ज्ञान न होकर व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास करना था । प्रकृति के सानिध्य में अध्ययन करवाया जाता था ताकि विद्यार्थी व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर सकें। धीरे–धीरे शिक्षा का स्वरूप बदलने लगा। स्वतंत्र पाठ्यक्रम बनने लगे, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों का विकास हुआ। मुस्लिम काल में सांसारिकता व लौकिकता की शिक्षा का प्रादुर्भाव हुआ, धार्मिक शिक्षा भी दी जाने लगी। कालान्तर में अग्रेंजों ने शिक्षा का ढांचा बदल दिया तथा प्राविधिक शिक्षा व लिपिकीय शिक्षा को प्रोत्साहित किया। स्वतंत्रता पश्चात् भारत सरकार ने कई शिक्षा आयोगों व समितियों का गठन शिक्षा व्यवस्था में सुधार लाने हेतु किया। भारत चूंकि विविधताओं वाला देश है अतः प्रमुख समस्या यह थी कि किस भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाए। अभी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2016 तैयार की गई है जिसकी परिकल्पना तो यही की गई है की यह शिक्षा प्रकिया को एक नई दिशा प्रदान करेगी पर यह सब समय ही तय करेगा। परन्तु यह तो तय है कि हमें शिक्षा के एकांगी दृष्टिकोणों से बचकर ऐसा मार्ग खोजना होगा जिससे भारतवर्ष अपने विद्यार्थियों का समावेशी विकास व व्यावहारिक शिक्षा प्रदान कर सके। अपनी शिक्षा प्रणाली पर गर्व कर सके तथा समाज में मानवीय मूल्यों का बीजारोपण कर सके।

मुख्य शब्द : गुरुकुल, उस्ताद, मकतब, त्रिभाषा सूत्र, वस्तु–विनिमय।

प्रस्तावना

भारतीय शिक्षा प्रणाली : एक विकास क्रम

प्राचीन भारत में शिक्षा का स्वरूप ब्रह्मचर्य पद में अपनी सारी मान्याताओं के साथ सुरक्षित है। हिन्दू धर्मशास्त्र का यही मूलाधार है। वस्तुतः पाठ्य विषय और पाठ्यक्रम शिक्षा की पद्धति प्रशिक्षण अनुशासन सब इसी के द्वारा विहित होता रहा है।[1] सामान्य जीवन को विशिष्ठ बनाना ही शिक्षा है। शिक्षा आत्मनिहितार्थ होती है। इसी भाव को व्याकरण शास्त्रीय वाक्य में व्यक्त किया गया है। 'शिक्षेर्जिज्ञासायाम्' अर्थात् जिज्ञासा होने पर 'शिक्ष' धातु से आत्मनेपद (आत्मनिहितार्थ पद) होता है, यथा वेदे 'वेदे शिक्षते' (वेद विषय सीखता है) इसी तरह हम कह सकते है कि मनुष्य का प्रतिक्षण सीखना ही सामान्यतया 'शिक्षा' कहलाती है।[2]

व्यापक अर्थ से तात्पर्य है अपने को सभ्य और उन्नत बनाना अर्थात "शिक्षा मनुष्य के आत्मिक विकास की वह गति है जो जीवन पर्यन्त अनुकरण, श्रवण, अध्ययन–मनन एवं संबंध स्थापन के द्वारा चलती रहती है। संकुचित अर्थो में शिक्षा का तात्पर्य उस शिक्षण से है जो युवक व्यवसाय में लगने के पूर्व अपने विद्यार्थी जीवन में प्राप्त करता है। हमारी शिक्षा व्यवस्था आदिकाल से ही मनीषियों की दृष्टि में मनुष्य के सर्वांगीण विकास का महत्वपूर्ण साधन रही है। प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा की अवधारणा प्रारम्भ से ही सुव्यवस्थित रही, जिसमें मानव जीवन से संबंधित सभी पक्षों की शिक्षा प्रदान की जाती थी, ताकि उसके लौकिक एवं पारलौकिक जीवन का उत्थान सही ढंग से आध्यात्मिक एवं बौद्धिक उत्कर्ष संभव था। शास्त्र और विवेक से शिक्षा सम्पन्न होती है और शिक्षा से मनुष्य में ज्ञान का उदय होता है।[3]

वैदिक युग में शिक्षा का उद्देश्य आध्यात्मिक एवं मानवीय गुणों के मध्य संतुलन बनाए रखना था शिक्षा अनिवार्य नहीं थी। प्रायः गुरु के समीप रह कर शिष्य गुरु के दैनिक जीवन तथा कर्मों में जो सहायता करता था उसी के द्वारा उसे जीवन विषयक ज्ञान भी हो जाता था। सामूहिक शिक्षा की अपेक्षा व्यक्तिगत शिक्षा पर जोर दिया जाता था।[4] इस परम्परा में शिक्षा का प्रारम्भ उपनयन संस्कार से होता था। विद्यार्थी का पिता या विद्यार्थी स्वयं शिक्षा के प्रति जिज्ञासु भाव लेकर गुरु के सम्मुख उपस्थित होता था और उस गुरु का शिष्य बनने की जिज्ञासा प्रकट करता था। विद्यार्थी की बुद्धिलब्धता से प्रसन्न होकर या संतुष्ट

होने के उपरांत ही विद्यार्थी का उपनयन संस्कार किया जाता था। गुरु व्यक्तिगत सामूहिक या पिता के रूप में भी विद्यार्थी को ज्ञान प्रदान करते थे। शिक्षार्थी शिक्षा प्राप्ति के काल में गुरुकुल में निवास करता था। इस प्रक्रिया से उसके व्यक्तित्व में अलग प्रकार का निखार या आत्मविश्वास जाग्रत होता था जो जीवन पर्यन्त उसके लिए सहयोगी होता था। बालकों के साथ स्वयं बालिकाओं के भी उपनयन संस्कार किए जाते थे। व्यवहार में या आज के समय के अनुरूप समझे ंतो उपनयन संस्कार गुरुकुल का पंजीकरण होता था। शिक्षा सभी के लिए समान भाव से उपलब्ध थी। जीवन के सभी क्षेत्रों से संबंधित पाठ्यक्रमों का निर्माण कर लिया गया था और शिक्षार्थी भी विषय चयन करके पढ़ना चाहता था। उसको पढ़ाने की व्यवस्था गुरुकुलों के द्वारा की जाती थी। लगभग 64 विद्याएं (संकायों) प्रचलन में थी किंतु निषेधकारी शिक्षाओं का पाठ्यक्रम उपलब्ध होने के बाद भी उनसे संबंधित कार्यक्रम में प्रवेश लेने की जिज्ञासा विद्यार्थियों के द्वारा प्रकट नहीं की जाती थी। भारतीय परम्परा में पाठ्यक्रमों का निर्माण इस प्रकार किया गया था कि उसमें से विद्यार्थी अल्पकालिक कार्यक्रम से लेकर दीर्घकालिक कार्यक्रमों तक का चयन अपनी सुविधानुसार कर सकता था।[5]

सही अर्थों में उपनिषदीय शिक्षा यानि गुरु के सम्मुख उपस्थित होकर ज्ञान प्राप्ति को श्रेष्ठ माना जाता था। सभी गुरुकुलों की प्रायः विद्वत परिषद होती थी। परिषद के सभी सदस्य अपने–अपने विषयों के निष्णात आचार्य होते थे। शिक्षा का प्रारम्भ अक्षर ज्ञान से होता था और व्याकरण को शिक्षा का मूल आधार माना जाता था, तदोपरान्त वेद अध्ययन किया जाता था। कालांतर में यह कर्मकांड के अभ्युदय के कारण परिवर्तित हो गया। अधिकांश व्यक्ति सीधे स्वयं ही वेद पढ़ने लगे किंतु पाणिनी ने इस व्यवस्था को परिवर्तित किया और अध्ययन के आधार के रूप में पुनः व्याकरण के महत्व को प्रतिस्थापित किया। पाणिनी इसी कारण व्याकरणिक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। जीवन से संबंधित सभी विषयों के लिए अलग – अलग अध्ययन शालाओं का भी उल्लेख मिलता है। कालांतर में इस व्यवस्था में परिवर्तन हुआ और सभी विधाओं पर ब्राह्मणों का वर्चस्व स्थापित हुआ। राजाओं की भी विद्वत परिषदें हुआ करती थी। विद्वानों की विद्वता का मूल्यांकन सामान्यतः इन्हीं विद्वत परिषदों में होता था। अनेक ब्राह्मण विद्वान भी इन्हीं परिषदों में आकर अपने – अपने पांडित्य को प्रदर्शित करके समाज में श्रेष्ठ विद्वान के रूप में प्रतिष्ठापित होते थे। विश्वपति जनक आदि की विद्वत परिषदें जगविख्यात थी। छोटे गुरुकुलों में आचार्य को और बड़े गुरुकुलों के अधिपति के रूप में कुलपति की प्रतिष्ठा थी। गौ गुरुकुल की भारी संपति मानी जाती थी। आचार्य और कुलपति को अपने सामर्थ्य के अनुरूप अपने गुरुकुलों की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होती थी। कुलपति के विषय में यह बात प्रचलन में थी कि कुलपति वही हो सकता था जो कि दस हजार विद्यार्थियों और एक हजार शिक्षकों की शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। शिक्षा का व्यवसायीकरण व्यवहार में नहीं था।[6]

प्राचीन भारतीय समाज में उत्तम चरित्र को धन शारीरिक शक्ति एवं ज्ञान से अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हुए इसे मानव जीवन का 'मेरूदण्ड' कहा है। जिसके नष्ट होने पर सब कुछ खो जाने की बात कही गई। 'अल्तेकर' महोदय भी शिक्षा के चारित्रिक उद्देश्य के मामले में पश्चिमी विद्वान लोक के विचार से सहमत होते हुए कहते है कि नैतिक भावनाओं के विकास और चरित्र निर्माण की महत्ता बौद्धिक सिद्धियों से अधिक है।[7] गुप्तकाल में बालक की प्रारम्भिक शिक्षा पाठशालाओं एवं विद्यालयों के माध्यम से सुव्यवस्थित हुई। यह व्यवस्था पूर्व मध्यकाल तक और भी विकसित हो गई। इससे प्रारम्भिक शिक्षा के साथ ही साथ उच्च शिक्षा को प्रोत्साहन मिला।[8] ऐतिहासिक काल के उत्तरार्द्ध में लोक भाषाओं की बढती हुई लोकप्रियता के कारण लोक भाषा प्रारम्भिक शिक्षा का अंग बनी तथा इसका स्वतंत्र पाठयक्रम भी बन गया।[9] प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में अध्ययन अवधि के सम्बन्ध में कोई निर्धारित व्यवस्था नहीं मिलती । सामान्यतः विद्यार्थी जीवन की अवधि बारह वर्ष की होती थी। तब तक विद्यार्थी की आयु लगभग पच्चीस वर्ष की हो जाती थी। छठी शताब्दी ई.पू. में बौद्ध धर्म की प्रवर्तना ब्राह्मणवाद के प्रतिक्रिया स्वरूप हुई। इस प्रकार बौद्ध धर्म का उद्भूतिकरण तत्कालीन समाज के आडम्बर के प्रतिक्रियास्वरूप होने के कारण परम्परागत धर्म की तुलना में कतिपय मूल स्थानों पर ही उससे भिन्न था। इन धार्मिक आन्तरिक अन्तरों के प्रभाव स्वरूप बौद्धकालीन शिक्षा का स्वरूप भी वैदिक एंव ब्राह्मणकालीन शिक्षा प्रणाली से भिन्न रहा।[10] बौद्ध विहारों के साथ सामुदायिक शिक्षण संस्थाओं का जन्म होता है। इसके पहले विद्वान शिक्षक व्यक्तिगरूप से अपने उत्तरदायित्व पर शिक्षण कार्य कर रहे थे। इन्हीं विहारों के शिक्षण केन्द्र को देखकर आगे चलकर हिन्दुओं में भी आचार्य के मठों और मंदिरों में महाविद्यालयों का उदय हुआ। ये मध्यकालीन भारत में भी विद्यमान रहे। प्राचीन भारतीय शिक्षण सस्थाओं में तक्षशिला, वाराणसी, नालन्दा, वल्लभी, विक्रमशिला, ओदन्तपुरी, मिथिला आदि के नाम मुख्यतः लिए जाते है।[11]

मुस्लिम शिक्षा में उग्र धार्मिक भावना के तत्व (धार्मिक शिक्षा की प्रधानता) अवश्य थें, परन्तु उसमें सांसारिकता और लौकिकता के तत्व भी प्रचुर मात्रा में मौजूद थे। मुस्लिमकालीन शिक्षा में निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था शिक्षकों (तालवेइल्म और उस्ताद) के सम्मान विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण तथा उनके अनुशासनबद्ध जीवन–यापन करने पर विशेष पाठ्यक्रम की विविधता (विस्तृत होना) आदि का सुन्दर विधान था। नैतिकता की भावना एवं सांसारिक वैभव की प्राप्ति इस्लामी शिक्षा की विशेषता है। जिस प्रकार प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में विद्याध्ययन उपनयन संस्कार द्वारा प्रारम्भ किया जाता था। उसी प्रकार मुस्लिमकाल में मकतब प्रवेश विस्मिल्लाह संस्कार द्वारा शुरू होता था। बच्चे की उम्र चार वर्ष, चार माह, चार दिन की होने के पश्चात् उसे नई पोशाक पहनाई जाती थी। और मौलवी साहब कुरान की आयतें पढ़ते हुए बिस्मिल्लाह उच्चारण

द्वारा उसे विद्यादान देना प्रारम्भ करते थे। तब बच्चा मकतब आना – जाना शुरू करता था। वस्तुतः ये मकतब आज के प्राथमिक स्कूलों के समान थे। वे मस्जिद से सम्बद्ध होते थे। मुसलमानों में प्रारम्भिक विद्याध्ययन मस्जिदों से ही प्रारम्भ होता था जिससे उसके मस्तिष्क पर धर्म की गहरी छाप पड़ती थी। मकतब की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात छात्र मदरसों में प्रवेश करते थे। मदरसे उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए बने थे। मुस्लिमकाल में धार्मिक शिक्षा के साथ – साथ सांसारिक शिक्षा अथवा कहें की जीवनोपयोगी शिक्षा का समन्वय किया गया था। अतः कला–कौशल,शिल्प, कृषि, चिकित्सा तथा वाणिज्य जैसे जीवनोपयोगी विषयों के साथ–साथ कुरान, हदीस आदि धार्मिक विषयों को भी पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।[12]

आधुनिक शिक्षा के विकास में अंग्रेजों का योगदान है ऐसा माना जाता है। भारत का संबंध यूरोप और शेष विश्व के साथ प्राचीनकाल से ही रहा है। किंतु उसने कभी भी भला नहीं किया। तभी तो ''एक सद्विप्रा बहुधा वंदति'' सदृश विचारों का यही पर प्रगटीकरण होता रहा और इसी के आधार पर श्रेष्ठ लोकतांत्रिक विचार ''वादे – वादे जायते'' तत्वबोध प्रचलन मे रहा जिसने सभी प्राणियों और उनके विचारों का सम्मान करने का भाव भारतीयों के मन मे जाग्रत किया, किन्तु अन्य परम्पराओं में यह भाव दृष्टिगोचर नहीं होता क्योंकि उनकी परम्परा इतनी उदार नहीं रही जितनी कि भारत की।[13] अंग्रेज अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए भारतीय नागरिकों को कुछ विद्यालयी शिक्षा देकर तैयार करना चाहते थे। वे ऐसी शिक्षा की नयी व्यवस्था करते जिससे भारतीय विद्यार्थी किसी व्यवसाय की शिक्षा ग्रहण कर अपने को आत्मनिर्भर बना सकते निःसदेंह सरकार ने समय – समय पर विभिन्न शिक्षा कमेटियो का गठन भी किया। हंटर कमीशन ने हाईस्कूल पाठ्यक्रम के विषय में कहा कि प्रत्येक प्रांत अपनी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए अपने पाठयक्रम का निश्चय करे।[14]

1854 ई. मे वुड का घोषणापत्र प्रकाशित हुआ। इसके फलस्वरूप विज्ञान एवं प्राविधिक शिक्षा को बढ़ावा मिला। 1860 ई. में पंजाब मेडिकल कॉलेज की स्थापना हुई। द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप प्राविधिक मांग भी बढी थी। फलस्वरूप 1947 ई. तक देश में कुल 490 प्राविधिक संस्थाओं की स्थापना हो चुकी थी, जिसमें 49470 छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे।[15] स्वतंत्रता के पश्चात सर्वप्रथम डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में गठित आयोग (1952–53) में विचार किया। इस आयोग का गठन भारत सरकार द्वारा माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में सुझाव देने के उद्देश्य से किया गया था। इस आयोग ने द्विभाषी सूत्र का प्रतिपादन किया। मातृभाषा इनमे से एक भाषा होनी चाहिए।

भारत सरकार ने 14 जुलाई 1964 के प्रस्ताव के अनुसार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ. दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में भारतीय शिक्षा के सभी सोपानों एवं क्षेत्रों में विकास के लिए सुझाव देने हेतु एक आयोग का गठन किया जिसने अपना प्रतिवेदन 29 जून 1966 को प्रस्तुत किया। इस आयोग ने भी माध्यमिक स्तर पर भाषाओं के अध्ययन के प्रश्न पर विचार किया तथा केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मण्डल द्वारा 1956 की बैठक में प्रस्तावित त्रिभाषा सूत्र को संशोधित रूप में प्रस्तुत किया। इस आयोग ने यह स्वीकार किया कि देश के माध्यमिक विद्यालयों में तीन भाषाओं के अध्ययन की अनिवार्य रूप से व्यवस्था होनी चाहिए। उच्च शिक्षा में शिक्षा का माध्यम क्या हो इस सम्बन्ध में राधाकृष्णन आयोग ने उच्च शिक्षा में भी शिक्षा के माध्यम के रूप में शीघ्र से शीघ्र अंग्रेंजी के स्थान पर किसी भारतीय भाषा को रखने की सिफारिश की।[16] राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में भी त्रिभाषा सूत्र को अपनाने की संस्तुति की गई। सही बात तो यह है कि समस्या भाषा को लेकर उतनी नहीं है जितनी भाषागत भावुकता को लेकर है। भारत के संविधान निर्माताओं ने खेर समिति के दृष्टिकोण को अपनाते हुए संविधान के अनुच्छेद 45 में इस सम्बन्ध में नीति निर्देषक तत्वों के अन्तर्गत स्पष्ट उल्लेख किया कि संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर 6 से 14 वर्ष तक की आयु के सभी बालक – बालिकाओं के लिए शिक्षा की अनिवार्य व्यवस्था की जाए।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में प्राथमिक शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी पर द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक भी हम 6 से 10 वर्ष की आयु के कुल बालकों के 61 प्रतिशत को ही शालाओं में प्रवेश दे पाए तथा 11 से 13 वर्ष आयु–वर्ग के बालकों की कुल संख्या का 23 प्रतिशत ही विद्यालयों में प्रवेश प्राप्त कर सका।[17] भारत के आजादी के बाद शिक्षा में कई तरह के प्रयोग हुए है। इनमें नवोदय विद्यालयों की परिकल्पना उसका ढांचा छात्रों की आवासीय व्यवस्था नगरीय प्रभावों से अलग रखकर विद्यालयों की एकान्त भूमि में स्थापना कहीं न कहीं अतीत का आभास देती है। लेकिन यह प्रयोग भी गुरुकुलों का आइना नहीं है। अन्तर बहुत स्पष्ट है, अतीत की व्यवस्था में गुरु का घर अथवा आश्रम ही शिक्षा केन्द्र होता था। राज्य पोषक वृत्ति पर आधारित इन विद्यालयों की शिक्षा उस जीवन मूल्य को स्थापित नहीं कर सकती जो आचार्य कुलों में समाहित है। आधुनिक शिक्षण का संदर्भ दो तरह से स्थापित हो सकता है। आधुनिकता से सम्बन्धित शिक्षण अथवा आधुनिक काल से संबंधित शिक्षण।[18]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2016 को भारत में शिक्षा प्रक्रिया को नया रूप प्रदान करने के कार्य को दिशा देने के लिए तैयार किया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2016 एक ऐसी विश्वसनीय शिक्षा व्यवस्था की परिकल्पना करती है जो सभी के लिए समावेशी गुणवत्तायुक्त शिक्षा और जीवनपर्यन्त ज्ञानार्जन अवसरों को सुनिश्चित करने तथा उत्पादक जीवन जीने, देश की विकासात्मक प्रक्रिया में शामिल होने, ज्ञान आधारित समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला ज्ञान, कौशल, अभिवृतियों और मूल्यों को धारण करने वाले विद्यार्थियों व स्नातकों को तैयार करने और सामाजिक समरसता तथा धार्मिक भाईचारे को बढ़ावा देने में सक्षम हो। यह दृष्टिकोण भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास में शिक्षा के केन्द्रीय महत्व को मान्यता प्रदान करता है। महात्मा गांधी ने कहा था कि ''मुख्य कठिनाई यह है कि लोगों को यह

पता ही नहीं कि सच्चे अर्थों में शिक्षा क्या है ? हम ठीक उसी तरीके से शिक्षा का मूल्य निर्धारित करते है, जिस प्रकार हम भूमि का मूल्य या फिर वस्तुविनिमय बाजार में शेयरों का मूल्य निर्धारित करते है। हम केवल ऐसी शिक्षा देना चाहते है। जो विद्यार्थियों को अधिक से अधिक कमाने में सक्षम बनाए। हम कभी भी शिक्षा प्राप्त करने वाले के चरित्र में सुधार लाने के बारे में सोचते ही नहीं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2016 आने वाले कुछ वर्षो के लिए भारत में शिक्षा के विकास के लिए एक रूपरेखा प्रदान करती है। यह नीति शिक्षा संबंधी पूर्व राष्ट्रीय नीतियों मे निर्धारित लक्ष्यों और उद्देश्यों से संबंधित अधूरे कार्यों एवं मौजूदा तथा उभरते राष्ट्रीय विकास और शिक्षा क्षेत्र संबंधी चुनौतियां दोनो पर ध्यान देने का प्रयास करती है। राष्ट्रीय विकास में गुणवत्तायुक्त शिक्षा के महत्त्व को स्वीकारते हुए, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2016 सभी स्तरों पर शिक्षा की गुणवत्ता को महत्त्वपूर्ण रूप से सुधारने पर अभूतपूर्व ध्यान देती है और यह सुनिश्चित करती है कि समाज के सभी वर्गों को शैक्षिक अवसर उपलब्ध हों।

बाजारवाद की भूमिका आज शिक्षा के भारतीयकरण मे सबसे कड़ी बाधा है। बाजार का तंत्र आज सरकारी तंत्र के साथ मिलकर शिक्षा की बाजार उन्मुखी नीतियों का ही पोषण करता है। अंग्रेंजी शासन की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि उसने समाज के ऊपर बाजार को स्थापित कर दिया है। भारतीय समाज चाहते हुए भी राज्य और बाजार के गठजोड़ में चलते शिक्षा के भारतीयकरण को रोपित करने मे असफल हो रहा है। यद्यपि कुछ छुटपुट प्रयास हो रहे है किंतु वे ऊंट के मुह में जीरा सदृश ही है। भारत की शिक्षा व्यवस्था लम्बे समय तक विश्व के अनेक देशों का मार्गदर्शन करती रही है। फिर ऐसा क्या हुआ वह आज मार्गदर्शन नहीं कर सकती ?

आवश्यकता है इस दृष्टिकोण से सोचने की और उस सोच के आधार पर संरचना खड़ा करने की जिसमें शिक्षा के दृष्टिकोण से समाज की भूमिका सुनिश्चित हो, बाजार की नहीं। हम आज भारत को 250 – 300 वर्ष पूर्व नहीं ले जा सकते किंतु 250 – 300 वर्ष पुराने भारत को तो आज ला सकते है। और दोनों में क्या संबंध हो सकता है? विचार कर सकते है। आज शिक्षण संस्थाओं को पूर्ण स्वायतता देकर समाजोन्मुखी कार्य करने को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। इसलिए समस्त कथनों से मुक्त एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था प्रचलन में आए जो अतीत पर गर्व करना सिखाए और उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सके।[19]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वर्तमान शिक्षा अधूरी एवं एकांगी है। विभिन्न शिक्षा आयोगों की संस्तुतियों एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणाओं के बावजूद अभी शिक्षा को सम्पूर्णता प्रदान करने की दिशा में हम संतोषजनक प्रगति नहीं कर पाए है। परिणामस्वरूप हमारे शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व भौतिक, शारीरिक विकास, मानसिक विकास, संवेगात्मक विकास, बौद्धिक विकास, नैतिक विकास, आध्यात्मिक विकास तथा सामाजिक–सांस्कृतिक विकास में संतुलन आवश्यक है। शिक्षा के माध्यम से भारतीय संस्कृति के प्रति शिक्षार्थियों को जागरूक बनाना शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य है। भारतीय संस्कृति पर हमें गर्व एवं गौरव की अनुभूति होनी चाहिए। देश प्रेम तथा राष्ट्रीय सेवा भावना के विकास में शिक्षा का योगदान आवश्यक है। देशप्रेम के साथ – साथ अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना तथा विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास भी शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए। वस्तुतः शिक्षा का लक्ष्य मानव निर्माण है। संक्षेप में हम मूल्यों की सुरक्षा एवं मूल्यों के पुनर्जागरण की दृष्टि से नवीन शिक्षा के स्वरूप को निम्नांकित रूप में व्यक्त कर सकते हैः– सम्पूर्ण शिक्षा – मानव निर्माण की शिक्षा = आध्यात्मिक शिक्षा + आधुनिक शिक्षा।[20]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *सिंह डॉ किरण 'प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था' शिवांक प्रकाशन, नई दिल्ली 2009 पृ. 5*
2. *सिंह डॉ. किरण 'प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था' शिवांक प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. 15–16*
3. *मिश्र जयशंकर 'प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास' बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1980 पृ. 467*
4. *मुखर्जी आर. के. 'प्राचीन भारतीय शिक्षा' मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1974 पृ. 31*
5. *शर्मा पवन कुमार लेख योजना पत्रिका जनवरी 2016 पृ.19*
6. *शर्मा पवन कुमार लेख योजना पत्रिका जनवरी 2016 पृ.20*
7. *अल्तेकर अनन्त सदाशिव 'प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति' नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी 1979–80 पृ.137*
8. *छांदोग्योपनिषद 4.10.01*
9. *द्विवेदी निशा, शेवड़े डॉ गोपाल कृष्ण 'भारतीय शिक्षा प्रणाली' मनीष प्रकाशन दिल्ली 2009 पृ. 87*
10. *द्विवेदी निशा, शेवड़े डॉ. गोपाल कृष्ण 'भारतीय शिक्षा प्रणाली' मनीष प्रकाशन दिल्ली 2009 पृ. 90*
11. *द्विवेदी निशा, शेवड़े डॉ. गोपाल कृष्ण 'भारतीय शिक्षा प्रणाली' मनीष प्रकाशन दिल्ली 2009 पृ. 98*
12. *द्विवेदी निशा शेवड़े डॉ. गोपाल कृष्ण 'भारतीय शिक्षा प्रणाली' मनीष प्रकाशन दिल्ली 2009 पृ. 113*
13. *योजना पत्रिका जनवरी 2016 पृ. 21*
14. *द्विवेदी निशा शेवड़े डॉ. गोपाल कृष्ण 'भारतीय शिक्षा प्रणाली मनीष' प्रकाशन दिल्ली 2009पृ. 45*
15. *पुरोहित डॉ. जबरनाथ 'भारतीय शिक्षा विशेषताएं एवं चिंताएँ' वानर प्रकाशन जयपुर 2007 पृ. 18*
16. *पुरोहित डॉ. जबरनाथ 'भारतीय शिक्षा विशेषताएं एवं चिंताएँ' वानर प्रकाशन जयपुर 2007 पृ. 24*
17. *पुरोहित डॉ. जबरनाथ 'भारतीय शिक्षा विशेषताएं एवं चिंताएँ' वानर प्रकाशन जयपुर 2007 पृ. 28*
18. *सिंह डॉ. किरण 'प्राचीन भारतीय शिक्षण व्यवस्था' शिवांक प्रकाशन नई दिल्ली पृ. 332*
19. *नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2016 प्रारूप पृ. 67*
20. *मिश्र डॉ. अमरेश 'आधुनिक शिक्षा का स्वरूप' मिश्रा बुक डिपो इलाहाबाद 2012 पृ. 11*